अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष २२ अप्रैल - २०२२ प्रकाशन - ०४

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

अप्रैल २०२२

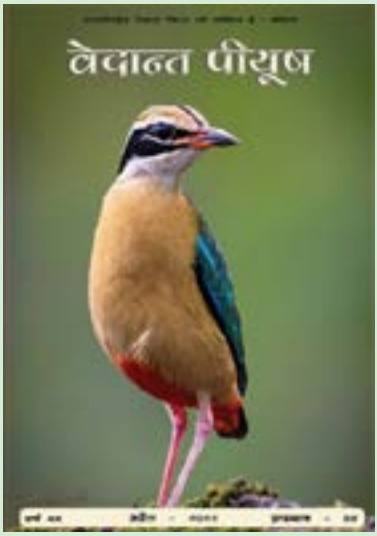

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ
सदाशिवसमारम्भाम्
शंकराचार्य मध्यमाम्
अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्
वन्दे गुरु परम्पराम्

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

1,	श्लोक	07
2.	पू. गुरुजी का संदेश	08
3.	वेदान्त लेख	16
4.	लघु वाक्यवृत्ति	22
5.	गीता चिन्तन	28
6.	श्री लक्ष्मण चरित्र	44
7.	जीवन्मुक्त	50
8.	कथा	54
9.	मिशन-आश्रम समाचार	58
10.	आगामी कार्यक्रम	79
11.	इण्टरनेट समाचार	80
12	लिन्क	82

अप्रैल 2022

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते
नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः।
व्यक्तयो विविधात्सर्वा
हाटके कटकादिवत्।।

(आत्मबोध श्लोक : 9)

जगत् के समस्त पदार्थ सच्चित् स्वरूप, नित्य, सर्वव्यापक विष्णु रूपी अधिष्ठान पर उसी प्रकार आरोपित किये जाते है, जिस प्रकार स्वर्ण में कंगन इत्यादि आभूषण।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

वासना से मुक्ति

अधिकतर मनुष्य वासना के वशीभूत होकर जीता है। वासना अर्थात् किसी परिस्थिति वा अनुभूति के पुनरावर्तन की प्रबल इच्छा। वर्तमान में संवेदना, सजगता का अभाव ही वासना का जनक है। वासना जितनी हद तक हावि होती है, उतने ही हम शिथिल व संवेदनाविहीन होते हैं। मानों हम सो रहे है। उस परिस्थिति को समग्रता से जीने के अभाव में असंतुष्टि रह जाती है और उसके पुनरावर्तन की इच्छा होती है।

यद्यपि वर्तमान में संवेदना और विवेक का अभाव वासना का जनक होता है, किन्तु यह भी अनुभव में आता है कि किसी परिस्थिति को पूर्ण उपलब्धता, संवेदना से जीने पर उसमें एक अलौकिक सुख की अनुभूति होती है, यह अनुभूति हमारे अन्दर गहरी छाप छोड़ जाती है और यही उस अनुभूति को दोहराने को विवश करती है।

वासना से मुक्ति

उससे यह दिखता है कि इन दोनों परिस्थिति में कोई समान घटक है, जो वासना संचित करने का हेतु बनता है और पुरानी वासना के अनुरूप जीने को विवश करता है। उस पर विचार करने से ही वासना से मुक्ति का समाधान मिल सकता है।

'वर्तमान में उपलब्धता और सजगता से संकल्पपूर्वक किया हुआ कार्य ही कर्म है।'

हमें यह देखना होगा कि वर्तमान में उपलब्धता से जीने में कौन सी बाधा है? उसका कारण अधिकतर फलाकांक्षी होकर, उसकी चिन्ता से युक्त होकर जीना है। फलाकांक्षा का हेतु अपने बारे में मन की कण्डिशनिंग, विषयों के प्रति महत्व, रागादि होते है।

हम फलाकांक्षी होकर बाहर किसी न किसी विषय से तृप्त होना चाहते है। जब किसी परिस्थिति व भोग में सुख की अनुभूति हुई तो उसमें महत्वबुद्धि स्थापित होकर उसे सुख का स्रोत

वासना से मुक्ति

मान लेते हैं। इन दोनों के पीछे अपने बारे में सुख से रहित, अतृप्त, अपूर्ण होने की धारणा होती है। इस अपने बारे में तथा जगत के बारे में मोहात्मक दृष्टि ही हमें दीनता से प्रेरित करती है। जब भी हम ऐसे भोक्तृत्व से प्रेरित होते है तो यह हमारे मन में कण्डिशिनंग उत्पन्न करता है।

'किसी भी परिस्थिति को वर्तमान में अनुपलब्धता से जीना ही वासना का हेतु बनता है।'

मन की कण्डिशिनंग भूतकाल में घसिटती है तो फलासक्ति भविष्य की चिन्ता से ग्रस्त करती है। इन कारणों की वजह से ही वर्तमान को समग्रता से जी नहीं पाते, कर्म में समग्रता नहीं हो पाती है। समग्रता के अभाव में न तो कर्म की संतुष्टि होती है, और न ही इष्टफल की सिद्धि। परिणाम स्वरूप निरुत्साहित व पश्चात्ताप से युक्त होकर अवसाद की गर्त में डूबे रहते है। हम अन्तहीन इस संसारचक्र में फंसे रहते है। वासना जितनी हद तक हावि होती है, उतने ही हम शिथिल व संवेदनाविहीन होते है। मानों हम सो रहे है।

वासना से मुक्ति

अध्यात्मिक धरातल पर भी उसके नुकसान होते है। आसक्ति, अभिमान व अपेक्षा समत्व को खण्डित करते है। समत्व का अभाव ही ज्ञान की अनुपलब्धता और भावना में बहना है। हम आगामी कर्म के हेतुरूप वासना का निर्माण करते जाते है। हमारी समस्त उर्जा चिन्ता, पश्चात्ताप आदि में व्यय हो जाती है, और परिस्थिति हावि होने लगती है। हम आत्मग्लानि से युक्त, आत्मबलविहीन व स्वयं को असमर्थ पाते हैं।

ऐसे में श्रवणादि से प्राप्त किए हुए ज्ञान की उपलब्धता नहीं हो पाती और ज्ञान को जी नहीं पाते। हमारे ही व्यक्तित्व में एक दिव्य ज्ञान से युक्त व्यक्ति है और दूसरा असमर्थ, हीनता से युक्त आयाम है। इन दो के मध्य में संघर्ष होकर दिव्यज्ञान की परम्परा के प्रति श्रद्धा भी प्रभावित होने लगती है। परिणामस्वरूप हम जीवन के परं लक्ष्य की सम्भावना से वंचित हो जाते है।

इन व्यवहार और अध्यात्म धरातल के दोष को गहराई से महसूस

वासना से मुक्ति

करने से तथा वर्तमान में समग्रता से जीने का महत्व स्थापित होने पर उन दोष से मुक्ति की और समग्रता से जीने की प्रेरणा होती है। पुरानी कण्डिशनिंग से मुक्त, पूर्ण उपलब्धता, बुद्धिमत्ता व समग्रता से जीने को कर्मयोग कहते है। बुद्धिमत्ता उसमें है कि फलाकांक्षा आदि के पीछे उन सब के हेतु भूत अपने बारे में जो धारणा है, उस गहराइ तक पहुंचें। जिस अपूर्णता की धारणा की वजह से समग्रता से जी नहीं पा रहे है, वह किसी भी दृष्टि से युक्तिसंगत वा प्रामाणिक नहीं है। यह जानते हुए तद्वि परीत पूर्णता की श्रद्धा को दृढ़ करके जीएं।

'जीव के बन्धन का हेतु उपहित चेतना की संकुचिता से तादात्म्य है।'

यही वास्तविक समग्र जीवन की कला है। अपने अनुभवों और अनुभवी से शिक्षा लेकर वर्तमान परिस्थिति में, स्वयं उपलब्धता से सुन्दरतम तरीके से जीना है, जिससे कि कोई अवशेष न बचें। ऐसा मन ही समाहित हो पाता है और उसके कर्म भी अपूर्व, प्रेरक, मन को प्रसन्न करनेवाले, सबके लिए कल्याणकर होते है। यही इष्टफल

वासना से मुक्ति

की सिद्धि करानेवाला होता है। भूत-भावि की चिन्ता से मुक्त समग्र जीवन की कला ही अन्तःशुद्धि का पर्याय है।

परिस्थिति में निरपेक्ष होकर जीना ही पूर्णता का पर्याय है। इससे पुरानी वासनाएं शिथिल होती जाती है और नइ वासना का संचय नहीं होता है। यही अन्तःकरण शुद्धि, मन की शान्ति, ज्ञाननिष्ठा का हेतु है। अतः पूर्णता की श्रद्धा से युक्त, समग्रता से जीने की कला का महत्व समझना चाहिए। यही अभ्युदय, निःश्रेयस की सिद्धि का द्वार है।

मया ततमिदं सर्वम् ....

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

कर्मसमाप्ति का रहस्य

जीवन्मुक्त अर्थात् जो जीते जी मुक्त है। जीवन्मुक्त के कर्म जीते जी समाप्त हो जाते है; अतः वे कर्म के बन्धन से यहीं रहते रहते मुक्त हो जाता है। जबतक जीवन है, तबतक कर्म अपरिहार्य होते हैं तथा जीव के जन्म का हेतु भी कर्म होता है। कर्म तीन प्रकार के है, प्रारब्ध, आगामी, संचित। प्रारब्ध कर्म शरीरप्राप्ति का व उसे बनाए रखने का हेतु है; यह छूटे तीर के समान है। अतः प्रारब्ध की समाप्ति पर ही शरीर शान्त होता है, उसे मृत्यु कहा जाता है। अर्थात् उसके उपरान्त वह व्यक्ति व्यवहार के लिए अनुपलब्ध हो जाता है। प्रारब्ध का भोग से क्षय होता है।

कर्मसमाप्ति का रहस्य

जीवन्मुक्त का शरीर भी प्रारब्धपर्यन्त चलता है, वह उससे असंग, चिन्तादि से मुक्त होकर जीता है। शरीर की समाप्ति पर उनकी वस्तुतः मृत्यु वा अभाव नही होते; क्योंकि वे स्वयं को शरीरादि से परे सर्व-अधिष्ठान, शाश्वत चिन्मयसत्ता समझकर जीते है, और चेतनसत्ता का कभी भी अभाव नहीं होता है। किन्तु दुनिया उनके ज्ञानादि से वंचित हो जाती है।

'प्रारब्ध का क्षय उसके भोग से ही होता है।'

जब तक जीवन है, तक तक कर्म अपरिहार्य होता है। इन कर्मक्षेत्र से ही आगामी कर्म का संचय होता है। जब किसी परिस्थिति को छोटेपन व दीनता से युक्त, स्वार्थ, अपेक्षावान होकर देखते है व उसकी प्राप्ति हेतु कर्म में प्रेरित होते है; उसका फल अवश्य प्राप्त होता है। अपेक्षादि की वजह से वह सुख-दुःख तथा

कर्मसमाप्ति का रहस्य

बन्धन का हेतु बनता है। उससे नई वासना, रागादि, नई इच्छाओं का संचय होता है और यह बेबसी में पुनरावृत्ति कराता है। उससे सतत वासना का संचय होकर कर्मबन्धन और दृढ़ होता जाता है। यही आगामी कर्म है। उसके वशीभूत होकर जीते है और संकल्प व विवेक की स्वतंत्रता छिन जाती है। अतः इसकी समाप्ति महत्वपूर्ण है।

वस्तुतः कर्म तथा कर्मक्षेत्र स्वतः न बन्धन लाता है और न मुक्ति। लाता है अतः कर्मक्षेत्र से दूर नहीं होना है, न यह सम्भव है। किन्तु उसके पीछे की एटिट्युड व अस्मिता में परिवर्तन करना है। कर्मयोग की एटिट्युड से, योगी बनकर कर्म करना है। वासना के नए संचय को सेवाभाव, निष्काम कर्म से तथा ईश्वर के निमित्त बनकर जीने से रोका जा सकता है। यही आगामी कर्म से मुक्ति है।

कर्मसमाप्ति का रहस्य

पुरानी वासना ही हमारी प्रकृति बनाती है। उसके अनुरूप स्वेच्छा से कर्मक्षेत्र को कर्तव्यरूप से ग्रहण करें व ईश्वर के सेवक बनकर कर्म करें। यह विश्वास हो कि आनन्द बाहर नहीं किन्तु हृदय में ही है। जितने हद तक योगी बनकर जी पाएंगे, उतने हद तक आवरण छूटता जाएगा। इस प्रकार अपनी प्रेरणानुरूप कर्म करने से वासना खतम होने लगती है। तथा निरपेक्ष होकर, उसे ईशेच्छा जानकर जीने से नए संस्कार आते नहीं है।

'निरपेक्षता से, ईश्वरकी आज्ञा जानकर जीने से नई वासना संचित नहीं होती है।'

हर व्यक्ति को कर्मक्षेत्र में अपनी वासना व प्रेरणानुरूप जाना चाहिए; किन्तु इच्छापूर्ति की ऐसी कला सीखें कि उसके बोजे से मुक्त हो जाएं। इस प्रकार आगामीकर्म को निष्कामता व सेवा के एटिट्युड से करने से समाप्त होते है।

कर्मसमाप्ति का रहस्य

संचित कर्म की समाप्ति ब्रह्मज्ञान से ही होती है। जहां स्वयं को अनुपहित चेतना जानकर, उसे हृदयान्वित करने पर उसी क्षण समाप्त हो जाते है। अहं ब्रह्मास्मि का ज्ञान हृदय में आ जाने पर पूर्णता से कृतार्थ होकर जीते है, उसी क्षण संचितकर्म भुने हुए बीज की तरह समाप्त हो जाते है। इस प्रकार आगामी की समाप्ति कर्मयोग से, प्रारब्ध की उसके भोग से तथा संचित की समाप्ति अपनी ब्रह्मस्वरूपता के विज्ञान से होती है। और यह जीवात्मा ब्रह्मलीन हो जाता है तथा कर्ता-भोक्ता जीव पर आश्रित समस्त कर्म परं तत्त्व में लीन हो जाते है। यही जीवन्मुक्त के कर्मबन्धन की समाप्ति का रहस्य है।

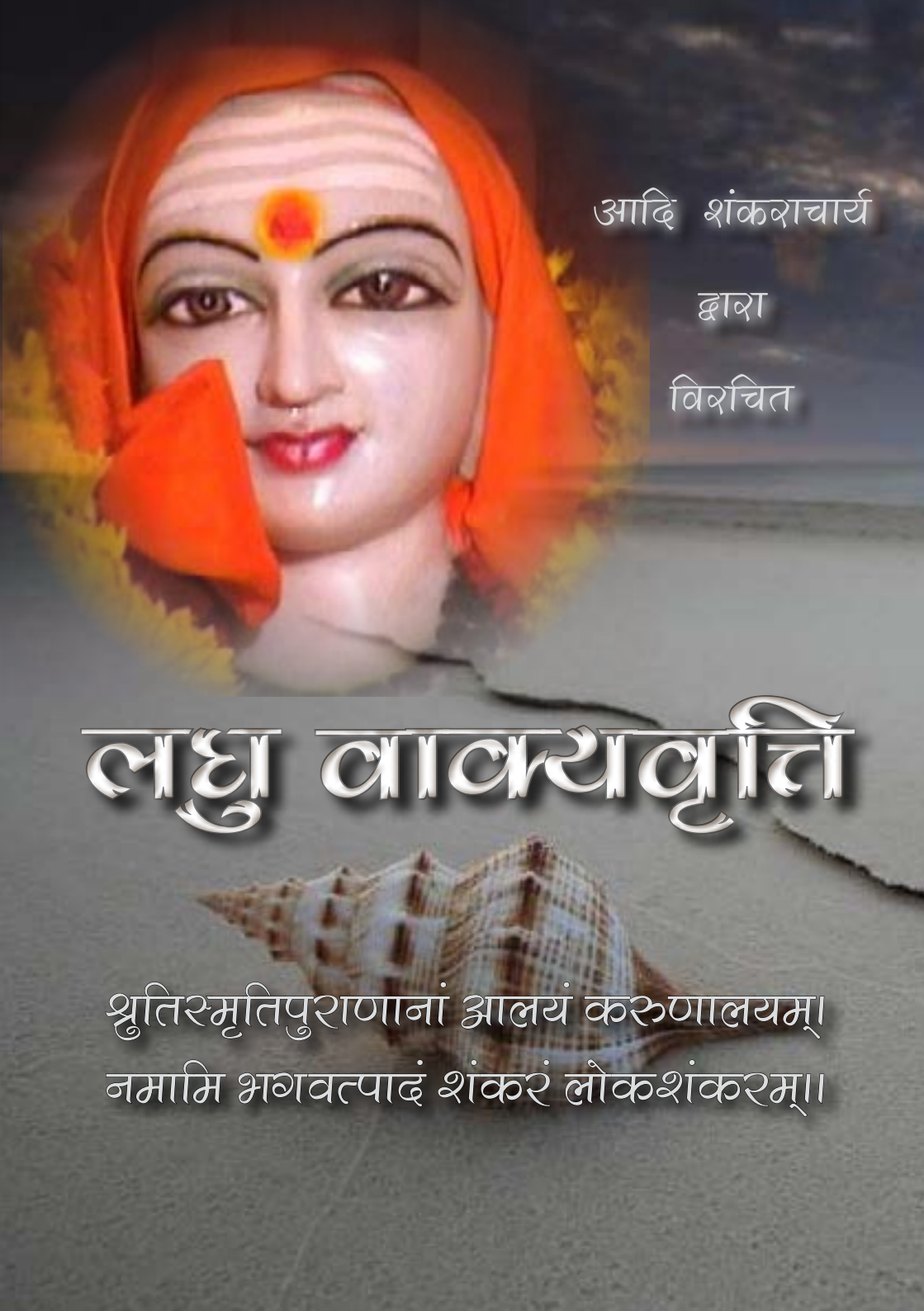

आदि शंकराचार्य

द्वारा

विरचित

लघु वाक्यवृत्ति

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

— श्लोक : ४ —

जागरस्वप्नयोरेवं
बोधाभासविडम्बना।
सुप्तौ तु तल्लये शुद्ध
बोधो जाड्यं प्रकाशयेत्।।

जाग्रत और स्वप्न अवस्था में ही बोधाभास का खेल होता है। सुषुप्ति में बोधाभास के लय हो जाने पर शुद्ध चेतनता अज्ञान को प्रकाशित करती है।

लघु वाक्यवृत्ति

पूर्व श्लोक में आचार्य ने बताया कि संसरण का कारण अविवेक है, अतः विवेक का आश्रय लेने से ही उससे मुक्ति प्राप्त होती है। यह विवेक, बोध और बोधाभास अर्थात् चेतना और उपहित चेतना का होता है। इस विवेक के लिए जीवन की विविध अनुभूतियों को समझना होगा। जीवन की विविध अनुभूतियों को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जाता है। इन अवस्थाओं का विवेक करना यहां बता रहे हैं।

'जाग्रदादि तीनों अवस्था में बोधाभास का ही खेल होता है।'

तीनों अवस्थाओं पर विचार करके यह देखना चाहिए कि यह किसकी अनुभूति व अवस्था

लघु वाक्यवृत्ति

है? इन अवस्थाओं को जीव के तीन शरीर के साथ तादात्म्य एवं उस धरातल की अनुभूति के आधार पर विभाजित किया जाता है।

सर्व प्रथम जाग्रत अवस्था वह है कि जिसमें हम श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों से शब्दादि विषयों को स्पष्ट रूप से ग्रहण करते हैं। यह हमारी पूर्ण विकसित अवस्था है। वहां प्रत्येक विषय का अत्यन्त स्पष्ट ज्ञान होता है, तथा बुद्धि के द्वारा विचार कर जगत के प्रति पूर्ण सचेत होकर प्रतिक्रिया भी कर पाते हैं, क्योंकि जाग्रत अवस्था में हमारा तादात्म्य स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीर के साथ होता है। स्थूलशरीर के माध्यम से सूक्ष्मशरीर के अन्तर्गत के ज्ञान, भावना, प्रतिक्रिया आदि अर्जित भी होते है, तथा अभिव्यक्त भी होते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु जाग्रत अवस्था में आने पर स्वप्न और सुषुप्ति की भी प्रत्यभिज्ञा अर्थात् स्मृति होती है।

लघु वाक्यवृत्ति

स्वप्न अवस्था हमारे मन का ही साम्राज्य होता है। जाग्रत अवस्था में अपने तथा जगत के बारे में कुछ न कुछ धारणा से प्रेरित विषयानुभूति ओर प्रतिक्रिया होती है। अच्छे अथवा बुरे की धारणा व महत्व की वजह से अन्तःकरण में अच्छे वा बुरे संस्कार व वासना संचित होते हैं। वासना अर्थात् जिस विषय की अनुभूति अपनी छाप छोड़ जाती है, एवं जाग्रत में जो-जो देखा, सुना, अनुभव किया, उन-उन चीजों की छाप अचेतन मन में पड़ जाती है। वासनाओं से स्वप्न निर्मित होता है। हर व्यक्ति के अपने वासना और संस्कार के अनुरूप ही स्वप्न होता है। उसमें हम विविध सुखादि अनुभूति का भोग करते हैं।

'जाग्रत अवस्था में स्थूलादि तीनों शरीर से तादात्म्य होता है।'

सुषुप्ति वह अवस्था है, जहां अन्तःकरण पूर्णतया लय को प्राप्त है। अतः मन पूर्णतया विश्रान्त है। यहां न अपने से पृथक् किसी विषय का

लघु वाक्यवृत्ति

अनुभव हो रहा है, तथा न हीं अपने होने का भी भान होता है। तथापि जगने के उपरान्त उसकी स्मृति होती है कि हम आराम से सोए, हमने कुछ नहीं जाना।' अर्थात् उसे प्रकाशित करनेवाला कोई न कोई है, जो अविकारी रूप से सुषुप्ति अवस्था को भी प्रकाशित करता है। वही शुद्ध बोध अर्थात् चेतना है। उस चेतनता के प्रकाश में सुषुप्ति में किसी के भी अग्रहण की अवस्था प्रकाशित हो रही है।

गीता मननम्

गीता अध्याय : 14

गुणत्रय विभाग योग

गुणत्रय विभाग योग

गीता के १४ वें अध्याय का नाम गुणत्रय विभाग योग है। पूर्व अध्याय क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग से विवेक प्रधान प्रसंग आरम्भ हुआ। उसमें भगवान ने दृश्य-दृष्टा, आत्म-अनात्मा विवेक प्रदान करके स्वयं को समस्त दृश्य का साक्षी चेतनतत्त्व बताया। अब इस अध्याय में माया के सत्वादि तीन गुणों को निमित्त बनाकर विवेक प्रदान करते हैं। पूर्व अध्याय के २२ वें श्लोक में भगवान ने बन्धन के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए बताया था कि 'पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान्। कारणं गुणसंगोऽस्य सदसज्जन्मयोनिषु।।' प्रकृति में स्थित पुरुष ही प्रकृति के तीन गुणों को भोगता है और इन गुणों के साथ संग ही उन जीवात्मा की

गुणत्रय विभाग योग

विविध पाप-पुण्य योनियों में जन्म का हेतु है। जब जीव पुरुष और प्रकृति का विवेक करके दोनों का तत्त्व जान लेता है, वह माया के बन्धन से मुक्त हमें प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः परमात्मा की अध्यक्षता में ही प्रकृति कार्य करती है। इसलिए प्रकृति और पुरुष का विवेक करना आवश्यक है। प्रकृति के साथ तादात्म्य अज्ञानवश जब होता है तो वह बन्धन का हेतु बनता है। ईश्वर अपने स्वरूप को जानते हुए प्रकृति को स्वेच्छा से धारण करके जगत की उत्पत्ति, स्थिति, नाश तथा उद्धार करते हैं।

जीव का अज्ञान के वशीभूत प्रकृति के साथ तादात्म्य संसरण की यात्रा का हेतु बनता है। प्रकृति दृष्ट है, समस्त नामरूपों की जननी, ग्राह्य होने से उसके साथ तादात्म्य होता है। एक ओर प्रकृति जड़रूपा है और दूसरी ओर दृष्टा चेतनस्वरूप है।

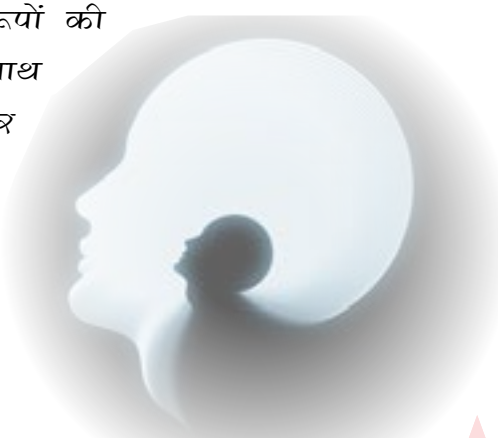

गुणत्रय विभाग योग

इन दोनों का तादात्म्य तमः प्रकाश की तरह असम्भव है। अतः यह जड़ चेतन का संयोग अध्यारोप जनित धारणा मात्र है। प्रकृति के धर्म को अपने धर्म मान लेना ही प्रकृतिस्थ होना है। अज्ञान के वशीभूत उनके धर्मो को अपना मानने की वजह से हम छोटेपन से युक्त होते है; जो कि हमें अच्छा नहीं लगता है। यही भोक्तृत्व को जन्म देता है।

'प्रकृति और पुरुष का संयोग अन्धकार और प्रकाश के समान असम्भव है।'

इस प्रकार प्रकृति के गुणों के साथ तादात्म्य करके उसे ही सुख-दुःख का स्रोत मान लेते है; उसके उपरान्त सतत उसकी प्राप्ति वा निवृत्ति हेतु कर्म का आश्रय लेकर संसार चक्र में फंस जाते है। अपने कर्म के अनुरूप पाप-पुण्यादि रूप योनियों की प्राप्ति करते रहते हैं। यह अध्यारोप ही बन्धन का हेतु है अतः निषेध ही मुक्ति का द्वार है। यह १३

गुणत्रय विभाग योग

वें अध्याय का २२वां श्लोक के बीजरूप विषय का यहां विस्तार करके मानों बताया गया है।

इस अध्याय में भगवान प्रकृति के तीन गुणों के तादात्म्य के स्वरूप और उसके प्रभाव को बताते हैं। इसे समझकर प्रकृति के गुण और पुरुष को पृथक् करके विवेक प्राप्त करना ही उससे छूटकारे का हेतु बनता है। विवेक से अभिप्राय है – विशेषेण विंक्ते। जिस प्रकार अग्नि के लाल गोले में विवेक करके अग्नि और लोहे को पृथक् किया जाता है। बुद्धि में दो घुली-मिली वस्तुओं को पृथक् करके देखने क्षमता ही विवेक है। विवेक धर्म-अधर्म, श्रेय-प्रेय, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, दृष्टा-दृश्य आदि धरातल पर होता है। पूर्व अध्याय में दृष्टा-दृश्य / क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का विवेक किया गया। अब इस अध्याय में भगवान प्रकृति पुरुष का विवेक प्रदान कर रहे हैं।

गुणत्रय विभाग योग

प्रकृति हमारा सामर्थ्य है। हमें में शब्द का अर्थ और प्रकृति का विवेक होना चाहिए। प्रकृति क्या है, कैसे कार्य करती है, उसके गुण कौनसे है तथा उसके गुणों का क्या प्रभाव होता है, इन सब रहस्यों को जानने से ही बन्धन का स्वरूप स्पष्ट होता है।

'प्रकृतिके गुणोंके रहस्यका ज्ञान मोक्षदायी है।'

इस विषय को आरम्भ करते हुए भगवान बताते हैं कि परं भूयः प्रवक्ष्यामि- पूर्व अध्याय में विवेक की चर्चा की थी, उसे हम भिन्न दृष्टिकोण से पुनः बताने जा रहे हैं। यह मोक्षदायी, सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। इसे जानने पर समस्त बन्धन से सर्वदा के लिए छूटकारा हो जाएगा। इसका आश्रय लेकर हमारे स्वरूप प्राप्तिरूप परंसिद्धि को प्राप्त किए हैं। यह भगवत्स्वरूपता अर्थात् पूर्ण, कृतकत्य होकर जीने का तरीका है। उनमें प्रत्येक परिस्थिति में, कर्म में पूर्णता की सुगन्ध आती है।

गुणत्रय विभाग योग

प्रकृति व उनके धर्म की संकुचिता से मुक्त, पूर्णकाम, ब्रह्मस्वरूप होकर जीते है, अतः वह जन्मादि रूप संसारचक्र से मुक्त हो जाते है। वह किसी पर आश्रित नहीं होने से प्रलय काले उसे कुछ भी खोने को नहीं है इस प्रकार जो भी जानता है, वह शोकादि से मुक्त हो जाता है।

भगवान उत्पत्ति के रहस्य में भी प्रकृति का योगदान बताते हैं कि हमारी सृजनात्मिका शक्ति है, जो तीन गुणों से बनी हुई है। यह हम पर आश्रित है, हम उसे अनुगृहीत करते हैं, तब वह जड़ होते हुए भी जीवन्त हो जाती है। इस प्रकार प्रकृति में मानो हम गर्भाधान करते हैं। और उससे समस्त जड़-चेतन जगत के सृजन की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। जिस प्रकार पिता माता की योनि में बीज प्रदान करता हैं वैसे ही हम भी मानों प्रकृति में गर्भाधान करते

गुणत्रय विभाग योग

हैं। उससे एक बार प्रकृति जाग्रत हो जाती है। उसके उपरान्त उनके सत्व, रजस् और तमस् रूपी गुण सक्रिय हो उठते है। यह प्रकृति इतनी आकर्षक है कि जो उसका सृजन करता है, वही उनसे प्रभावित होकर, उनसे तादात्म्य करके उसके बन्धन में आ जाते है। इस त्रिगुणात्मक देह के साथ देही तादात्म्य कर लेता है और उसके धर्मों को अपने समझने के द्वारा सुखी-दुःखी होता रहता है।

'देही का देह से तादात्म्य ही बन्धन का हेतु है।'

अब भगवान विविध गुणों का प्रभाव व लक्षण बताते हैं कि उसमें सत्व सब से निर्मल, शुद्ध होता है। अतः जहां पर भी सत्वगुण होता है, वहां प्रकाश, ज्ञान व गहराई से जानने का सामर्थ्य होता है। सात्विकता की वृद्धि में ही ज्ञान होता है। उससे आसक्ति, शोक आदि जैसे रोग दूर रहते है। इस प्रकार यह सुख

गुणत्रय विभाग योग

प्रदान करता है। सुख के साथ संग उत्पन्न करके सुख प्राप्ति की प्रेरणा होती है। इस प्रकार वह बांधता है। उसमें किसी कर्म आदि में प्राथमिक लक्ष्य मन की प्रसन्नता होती है।

सुखप्राप्ति की प्रेरणा यह दर्शाता है कि हम स्वभावतः सुख से रहित है। अतः सुख के साथ संग होता है और ज्ञान प्राप्ति की उत्कण्ठा होती है। उसमें ज्ञान का महत्व विद्यमान है, उससे सुख प्राप्त होता है, यह निश्चय सात्विकता का लक्षण है। इस प्रकार यह बन्धनकारी होते हुए भी मुक्ति का हेतु है।

रजो रागात्मकं विद्धि – रजोगुण रागादि व पराधीनता उत्पन्न करनेवाला होता है। रजोगुण की प्रधानता होने पर स्वकेन्द्रिता से प्रेरित बाह्य, अपने से पृथक् के प्रति अपेक्षावान होता है। तत्तद्

गुणत्रय विभाग योग

विषय को महत्व देकर उसके अनुपात्त में उसमें सुख-दुःख देने के सामर्थ्य की कल्पना होती है। इस प्रकार जीवन बाह्य वस्तु के प्रति आश्रित आसक्ति, राग-द्वेषादि विकार से युक्त होता है। उसमें स्वकेन्द्रिता की प्रधानता होने से सदैव चिन्तित रहता है। अपने काल्पनिक निश्चयों पर आश्रित होकर बाह्य परिस्थिति में परिवर्तन हेतु सतत कर्मादि रूप चेष्टा का आश्रय लेता है।

'सत्वगुण ही मुक्ति का द्वार है।'

इस प्रकार रजोगुण में विषयसुख की पराधीनता होती है और कर्म में संग उत्पन्न होता है। उसके लिए कर्म जिसमें सुख की कल्पना की है, उस अप्राप्त विषय की प्राप्ति का साधन है। उससे प्राप्त सुखादि नश्वर है, उसे वह देख नहीं पाता है। इस प्रकार देह में विराजमान देही अज्ञान के कारण उसमें उलज कर बन्धन को प्राप्त है।

गुणत्रय विभाग योग

तीसरा माया का गुण तमोगुण है। यह अज्ञान से जनित, जड़त्व उत्पन्न करता है। उसमें न तो कर्म की प्रेरणा होती है, न किसी भोग की प्रेरणा है। उसके जीवन में निरुत्साहिता, प्रमाद, आलस्यादि देखा जाता है। उसके माध्यम से देही को मोहित करता है। उसमें विवेक का पूर्णतः अभाव होता है। इस प्रकार तमोगुण प्रमाद, आलस्य, निक्रियता के साथ बांधता है। उसमें निष्क्रियता का सुख मिलता है, यह तमोगुण के बन्धन का सूचक है। इस प्रकार इन तीनों गुणों से एक व्यक्तित्व निर्मित होता है और जीवन चलता है।

अपने अन्दर कब कौन सा गुण हावि हो रहा है, उसे पहचानना आना चाहिए। उसके लक्षण भगवान बताते हैं कि सत्वगुण के वृद्धि होने पर इन्द्रिय, मन आदि तथा बाहर के विषय भी बहुत अच्छी तरह जानने का सामर्थ्य होता है। वह ज्ञान का अकांक्षी होता है। जब समस्त इन्द्रियों में

गुणत्रय विभाग योग

ज्ञान की प्रधानता हो, तब सत्वगुण हावि हो रहा है–यह जानना चाहिए। रजोगुण की वृद्धि होने पर मन में राग, तृष्णा, लोभ, आसक्ति आदि रूप दोषों की वृद्धि होती है। उक्त सब दोषों के बढ़ने पर सावधान हो जाना चाहिए कि हम में रजोगुण की प्रधानता हो रही है। तमोगुण की वृद्धि होने पर प्रमाद, मोह निरुत्साहिता, निष्क्रियता होती है। इस प्रकार अपने रोग की अच्छे से पहचान करके उसका दोष रियलाइज करना चाहिए।

'गुण और कर्म से ही जीव की आगे की यात्रा सुनिश्चित होती है।'

इन गुण और उससे प्रेरित कर्म के माध्यम से ही जीव की आगे की गति निर्धारित होती है। जब सत्वगुण की वृद्धि होती है तो उससे उत्तम, पुण्यलोक की प्राप्ति होती है। रजोगुण की वृद्धि होने पर कर्म प्रधान लोक प्राप्त होता है। और तमोगुण की वृद्धि मूढ़,

गुणत्रय विभाग योग

स्थावरादि योनि की प्राप्ति का हेतु बनती है। क्योंकि सात्विक कर्म का फल निर्मल, पुण्यरूपा होता है। राजसी कर्म का फल दुःखद, वासना की उत्पत्ति के हेतुरूप तृष्णा को बढानेवाला होता है। तथा तमो से प्रेरित कर्म अविवेकपूर्ण होता है, उससे अज्ञान और भी गहन होता है। इस प्रकार सात्विक व्यक्ति का सतत बाह्य और आन्तरिक विकास होता जाता है। राजसी व्यक्ति की यथास्थिति बनी रहती है और तामसी निकृष्टता में गिरता जाता है।

इन गुणों को व उसके प्रभाव को समझने से उससे असंगता होती जाती है और यह दीखता है कि नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं....। इन गुणों से भिन्न और कोई कर्ता नहीं है। अर्थात् सारा खेल गुणाः गुणेषु वर्तन्ते...। सब गुण ही गुणों में वरत रहे हैं। इस प्रकार गुणत्रय के

गुणत्रय विभाग योग

लक्षण से अप्रभावित होते हैं। गुणत्रय का खेल और उससे परे गुणातीत चेतन सत्ता का विवेक करके यथार्थ में जाग्रति होती है। हम कर्ता-भोक्ता जीव नहीं हैं, किन्तु हम एक चेतन अविकारी, असंग सत्ता है। भगवान बताते हैं कि यदा द्रष्टानुपश्यति... जब इस तथ्य को द्रष्टा देखकर गुणेभ्यश्च परं वेत्ति – गुणों से परे तत्त्व को जान लेता है, स मद्भावं अधिगच्छति – वह हमारे ही स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार गुणों के रहस्य को जानकर जन्मादिरूप संसारचक्र से मुक्त होकर अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

'स्वयं को गुणों से परे तत्त्व जानने से जन्मादिरूप संसार से मुक्ति होती है।'

गुणों के प्रभाव, उसके रहस्य तथा उससे परे गुणातीत तत्त्व के बारे में विस्तृत जानकारी पाकर अर्जुन अत्यन्त रोमांचित हो उठा और उन्हें गुणातीत के सन्दर्भ में जिज्ञासा हुई।

गुणत्रय विभाग योग

गुणातीत के लक्षण क्या होते हैं और कैसे गुणों से पर उस अवस्था में जाग्रति होती है। इसके उत्तर में आगे भगवान बताते हैं।

अन्तःकरण मायानिर्मित तीन गुणों का बना हुआ है, अतः उसमें उतार-चड़ाव होते रहते हैं। कभी मन में सत्वगुण की प्रधानता है तो कभी रजोगुण की तो कभी तमोगुण सिर उठाता है। अध्यात्म जिज्ञासु को अपने अन्तःकरण को सत्वप्रधान बनाना ही लक्ष्य होना चाहिए। उसके अभाव में इस गुणातीत की अवस्था में जाग्रति असम्भव है। सत्वगुण ही गुणों से परे ले जाने का एकमात्र द्वार है। इसलिए ज्ञानवान सत्वगुण प्रधान होता है। किन्तु अन्तःकरण में सत्वादि गुणों का प्रभाव प्रत्यक्ष होता है। उन गुणों के उतार-चड़ाव के मध्य में ज्ञानवान रहते हुए भी गुणपरिवर्तन की इच्छा नहीं करता है और न ही उससे पलायन करना चाहता है। विविध गुणों की वृद्धि-अपक्षय में वह अलिप्त रहता है। वह उससे परे गुणातीत

गुणत्रय विभाग योग

तत्व को जानकर उसमें स्थित हैं। अतः वो न द्वेष करता है और न ही राग करता हैं।

उसमें हर परिस्थिति में समत्व, संवेदना, सजगता बने रहते है। जो यह जानता है कि गुणों से भिन्न और कोई कर्ता नहीं है और गुणों से परे, उससे असंग तत्त्व जिसकी वजह से प्रकृति के गुण सत्ता-स्फूर्ति को प्राप्त करके कार्य करते हैं, चिन्मयी सत्ता अपने आपको जानता है; वही इस गुणातीत की अवस्था में जगकर हमारे स्वरूप को प्राप्त करता है।

अन्त में भगवान कहते हैं कि जो हमारे प्रति स्थिर भक्ति से युक्त हमें भजता है, वह गुणों से परे हमें ही प्राप्त कर लेता है। हम ही अविनाशी, अमृतधर्मा ब्रह्म, सब का आश्रय हैं।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

— १७ —

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

श्रीराम के वनगमन के समय लक्ष्मणजी का उनके साथ जाने के आग्रह को देखकर प्रभु ने उन्हें विविध प्रकार से उपदेशित किया। किन्तु प्रभु के उपदेश से लक्ष्मणजी लेशमात्र भी प्रभावित नहीं हुए। वस्तुतः वे उपदेश के धरातल से उपर उठ चुके थे। राघव ने उन्हें जिन सम्बन्धों की स्मृति दिलाई थी, उनका आधार शरीर ही था। जो देह से उपर उठ चुका हो उसके लिए किसी भी लोकधर्म का प्रयोजन भी क्या था? क्योंकि उनकी धर्म और कर्तव्यपालन के परिणामों को प्राप्त करने में कोई रुचि ही नहीं थी। अतः उन

श्री लक्ष्मण चरित्र

पर बलपूर्वक धर्म को थोपा ही कैसे जा सकता था! उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया कि धर्मपालन के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाली कीर्ति, भूति और सुगति में उन्हें कोई रुचि नहीं है। वे तो प्रभु के स्नेह के द्वारा पालित नन्हें शिशु हैं और उनके लिए धर्म का भार उठा पाना उसी तरह असम्भव है, जैसे हंस के लिए मन्दराचल पर्वत को उठा पाना। यह प्रभु के उस तर्क का उत्तर था जिसमें कहा गया था कि कर्तव्य के बोझ से भागना कायरता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए सब कुछ कर पाना सम्भव नहीं है। प्रकृति ने जिसका निर्माण जिस कार्य के लिए किया है,

श्री लक्ष्मण चरित्र

उसके लिए वही कर पाना सम्भव है। अन्य लोगों को भी उससे उतनी ही आशा रखनी चाहिए। हंस साहित्य में बहुसम्मानप्राप्त पक्षी है पर उसकी प्रशंसा नीर-क्षीर विवेक को लेकर है, न कि भार-वहन की क्षमता के माध्यम से उसकी परीक्षा की जा सकती है। हंस जल मिश्रित दुग्ध में दूध को अलग कर उसे पी लेता है। लक्ष्मणजी एक ऐसे हंस हैं जो लोकधर्म और भागवतधर्म के जल-दूध मिश्रण में से भगवतधर्म का दूध पी लेते हैं। उनसे इसे छोडकर और किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ है। यही उनका स्व-धर्म है। उनके लिए अन्य सारे उपदेश 'पर धर्मो भयावहः' के रूप में सर्वथा त्याज्य हैं। अत्यन्त विनम्रतापूर्वक प्रभु के तर्कों को जिस सरलता से अस्वीकार कर देते हैं उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके अन्तःकरण में

श्री लक्ष्मण चरित्र

भ्रम या संशय की कोई ग्रन्थि है ही नहीं। वे पूरी तरह अन्तर्द्वन्द्व से मुक्त हैं। उन्होंने प्रभु के उपदेश के उत्तर में जो वाक्य कहें, उसमें प्रीति की मुख्यता तो है ही, पर तर्क की कसौटी पर भी उसमें कहीं त्रुटि नहीं है। इसलिए प्रभु उनकी प्रार्थना अस्वीकार नहीं कर पाते हैं और तत्काल उन्हें साथ चलने की स्वीकृति प्रदान कर देते हैं।

विभूति दर्शन

जीवनमुक्त

– 22 –

उत्तरकाशी

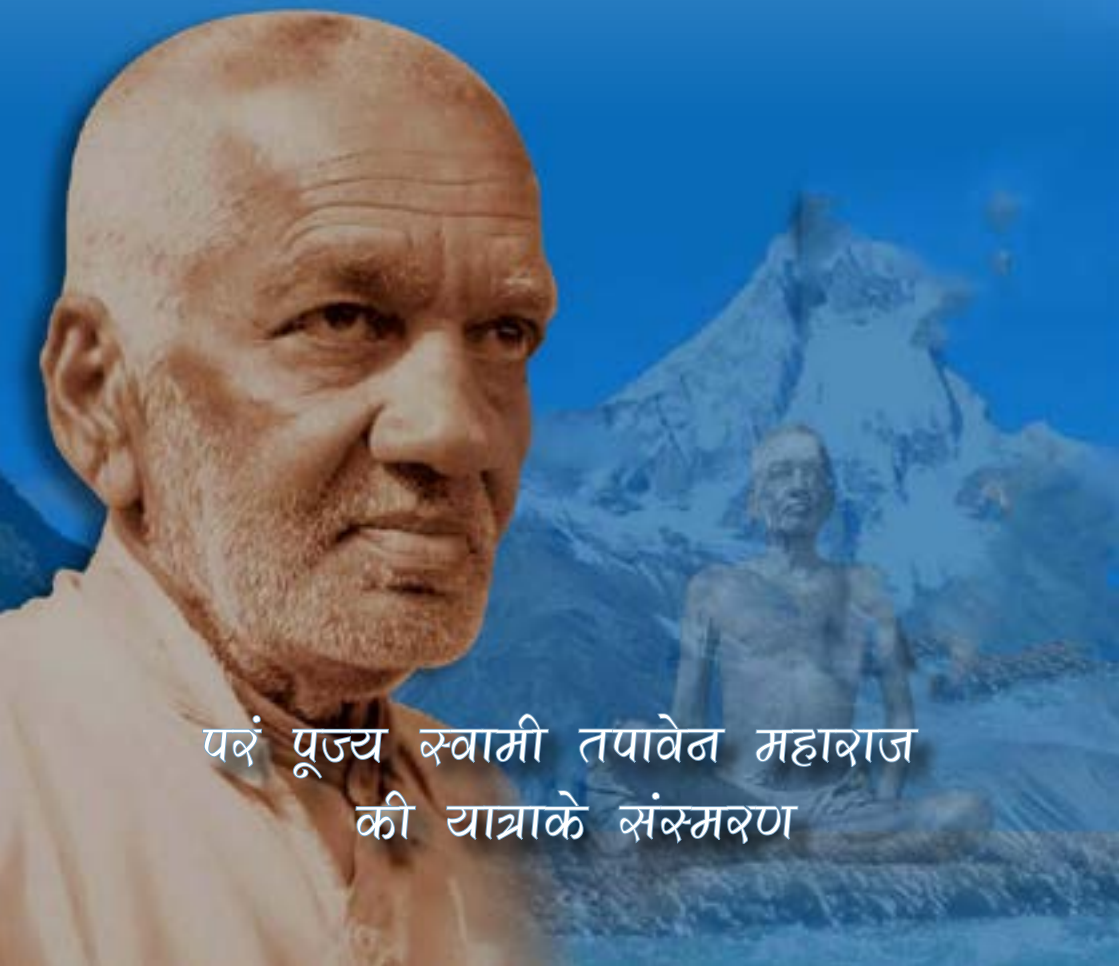

परं पूज्य स्वामी तपोवेन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवनमुक्त

माया के अधिकार को तोड़े बिना जब तक मनुष्य बद्ध दशा में पडा रहता है, तब तक एक पण्डित और एक कीड़े में कोई भेद नही होता। ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति तो भगवान् ने दोनों को दी है। जो मनुष्य देहेन्द्रियों में आसक्ति रखकर दोनों प्रकार की इन्द्रियों के विषय के व्यवहार में सुखदुःख भोगते हुए जीवन बिताते हैं, जो अपनी विशेष बुद्धि को बंधन से मुक्त करने में नही, किन्तु बंधन को और भी मजबूत करने के काम में लगाते हैं। उन्हें यह कतई अधिकार नहीं है कि वे अपने को विशेष

जीवन्मुक्त

बुद्धि से संपन्न समझे और उसके द्वारा अपने को अन्य जीवों से महान् मानें। अधिक-अधिक बन्धन और दुःख ही विशेष बुद्धि का परिणाम है। तो फिर, ऐसी विशेष बुद्धि से वह कौन सी महत्ता मनुष्य को मिल जाती है जो दूसरे प्राणियों में नहीं होती? इसमें जरा भी शंका नही है कि देह में आत्मबुद्धि की स्थापना करके उसमें बद्ध और आसक्त होकर, अधिकाधिक विषयोंका उपार्जन करके भोग करने में उतावले मनुष्यों की विशेष बुद्धि ही उनके लिए बन्धन और अधिक दुःख का कारण बनती है। लेकिन यदि किसी का यह तर्क है कि विशेष बुद्धि से युक्त मनुष्य दूसरे जीवों की अपेक्षा ऐहिक जीवन को अधिक सुखपूर्वक बिता सकता है तो उनको चाहिए कि वे 'शोपनहोर' नामक एक महान् चिन्तक की इस बात पर गौर से विचार करें। वे यों कहते हैं:-

"जानवर आदि जंतुओं को वर्तमान काल

जीवन्मुक्त

को छोडकर भूत-भविष्य की कोई चिन्ता या डर नहीं लगता। इसलिए वर्तमान में जो कुछ मिल जाता है, वे उसे व्यग्रता छोड़कर शांति से भोग लेते है। इसका तात्पर्य यह है कि इस बात में जानवर मनुष्यों से भी पक्वबुद्धि है। यह लज्जा के साथ मानना पडता है कि प्रकृति के कारण उन्हें जो मानसिक शांति मिल जाती है वह अक्सर नाना प्रकार की चिंताओं और भीतियों से सुख-चैन खोकर व्यग्र रहने वाले हम मानवों को नहीं मिलती।'

पौराणिक गाथा

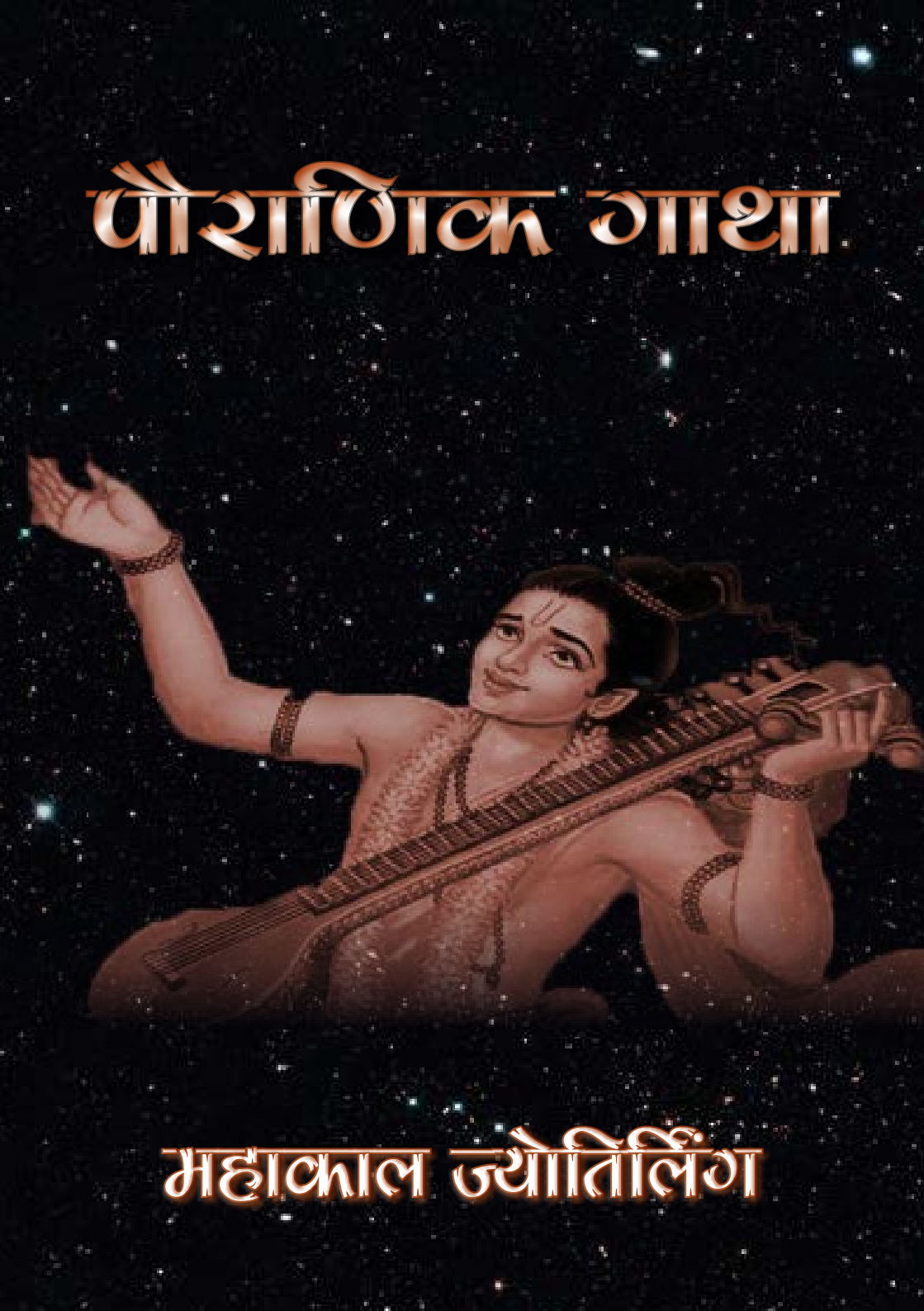

महाकाल ज्योतिर्लिंग

महाकाल ज्योतिर्लिंग

महाकाल ज्योतिर्लिंग मध्यप्रदेश की उज्जयिनी नगरी में पुण्यसलिला क्षिप्रा नदी के तटापर स्थित हैं। इसे अवन्तिका पुरी नाम से भी जाना जाता है। यह भारत की परम पवित्र सप्त पुरियों में से एक है।

स्कन्दपुराण में इस ज्योतिर्लिंग की कथा इस पकार से वर्णित है। प्राचीन काल में उज्जयिनी में राजा चन्द्रसेन राज्य करते थे। वे परम शिवभक्त थे। एक दिन श्रीकर नामक एक गोपबालक अपनी मां के साथ गुजर रहा था। राजा का शिवपूजन देखकर उसे बहुत विस्मय और कौतुहल हुआ। वह स्वयं उसी प्रकार की पूजन सामग्रियों से पूजन करने हेतु लालायित हो उठा।

महाकाल ज्योतिर्लिंग

सामग्री का साधन न जूट पाने पर लौटते समय उसने रास्ते से एक पत्थर उठा लिया । घर आकर उसी पत्थर को शिवजी के रूप में स्थापित कर पुष्प-चन्दनादि से परम श्रद्धापूर्वक उसका पूजन करने लगा। माता भोजन करने के लिए बुलाने आई किन्तु वह पूजा छोड़कर किसी प्रकार से उठने को तैयार नहीं हुआ। अन्त में माता ने क्रोधित होकर उस पत्थर के टूकडे को उठाकर दूर फेंक दिया। इससे बहुत ही दुःखी होकर श्रीकर भगवान शिवजी का नाम पुकार-पुकार कर जोर जोर से रोने लगा। रोते रोते अन्त में बेहोश होकर वहीं गिर पड़ा।

बालक की अपने प्रति निःस्वार्थभक्ति देखकर भोलेनाथ भगवान शिव अत्यन्त प्रसन्न हुएं। बालक ने जब होश में आने पर आंख खोलकर देखा तो उनके समक्ष एक बहुत ही भव्य और अतिविशाल स्वर्ण और रत्नों से जड़ित मन्दिर खड़ा हुआ है। उस मन्दिर में बहुत ही प्रकाश

महाकाल ज्योतिर्लिंग

से पूर्ण, भास्वर, तेजस्वी ज्योतिर्लिंग विराजमान है। यह देखकर श्रीकर प्रसन्नता से आनन्दविभोर होकर शिवजी की स्तुति करने लगा।

माता को जब यह ज्ञात हुआ तो तब दौड़कर अपने प्यारे बालक को गले लगा लिया। बाद में राजा चन्द्रसेन ने भी वहां पहुंचकर श्रीकर की भक्ति और सिद्धि की सराहना की। धीरे धीरे वहां भीड़ जुट गई। उसी समय उसी स्थान पर हनुमानजी प्रकट हुए। उन्होंने सब को सम्बोधित करते हुए कहा कि, मनुष्यों! महादेवजी समस्त देवताओं में सबसे अधिक और शीघ्रता से प्रसन्न होने वाले देवता हैं। इस बालक की भक्ति से प्रसन्न होकर उन्होंने उसे ऐसा फल प्रदान किया है कि जो बड़े बड़े ऋषि-मुनि और तपस्वी लोग भी करोड़ों जन्मों की तपस्या के उपरान्त भी नहीं पा सके हैं। इसमें स्वयं महादेव का ज्योतिरूप से प्रवेश हुआ हैं, इसलिए यह महाकाल ज्योतिर्लिंग के नाम से जाना जाएगा। वही उज्जैन नगरी में स्थित ज्योतिर्लिंग भगवान महाकाल के नाम से जाना जाता हैं।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

उपदेश सार शिविर

आश्रम समाचार

उपदेश सार प्रवचन

– पू. गुरुजी के द्वारा

दि. २ से ६ मार्च २०२२

आश्रम समाचार

ध्यान सत्र - स्वा. समतानन्दजी द्वारा

आश्रम समाचार

संस्कृत एवं श्लोकपाठ

स्वा. अमितानन्दजी द्वारा

आश्रम समाचार

संस्कृत एवं श्लोकपाठ

आश्रम समाचार

मन्दिर आरती
– स्वा. पूर्णानन्दजी द्वारा

आश्रम समाचार

भिक्षा एवं भण्डारा

आश्रम समाचार

शिविर के अनुभव एवं भाव अभिव्यक्ति

आश्रम समाचार

शिविर समापन

आश्रम समाचार

संन्यास दीक्षा दिवस

स्वा. अमितानन्दजी एवं स्वा. पूर्णानन्दजी

आश्रम समाचार

ओम् नमः शिवाय

आश्रम समाचार

महाशिवरात्री पूजा/अभिषेक

आश्रम समाचार

महाशिवरात्री शृंगार

आश्रम समाचार

महाशिवरात्री की सायं आरती

आश्रम समाचार

संन्यास दीक्षा दिन / २८ फरवरी

ओम् श्री गुरुभ्यो नमः।

आश्रम समाचार

स्वा. पूर्णानन्दजी के जन्मदिन पर

पू. गुरुजी के आशीर्वचन

आश्रम समाचार

प्रसाद ग्रहण

आश्रम समाचार

होली के शुभाशीष

आश्रम समाचार

गरुड़माची, पूने की यात्रा

आश्रम समाचार

वरिष्ठ नागरिकों को आशीर्वचन

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

३० अप्रैल से ७ मई २०२२

गीता ज्ञान यज्ञ, बडौदा

गीता अध्याय – ११ / दृग्दृश्य विवेक

पूज्य स्वामिनी अमितानन्दजी द्वारा

प्रेरक कहानियां एवं अन्य प्रकाशन

Facebook पर VDS group में नियमित प्रसारण

आश्रम महात्माओं के द्वारा

आत्मबोध (ओनलाईन)

Facebook पर VDS group में नियमित प्रसारण

पूज्य गुरुजी के द्वारा

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

~ Upadesh Saar

~ Atma Bodha Pravachan

~ Sundar Kand Pravachan

~ Prerak Kahaniya

~ Ekshloki Pravachan

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Kathopanishad Pravachan

~ Shiva Mahimna Pravachan

~ Hanuman Chalisa

Internet News

Audio Pravachans

~ Upadesh Saar

~ Prerak Kahaniya

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Atmabodha Lessons

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Monthly eZines

Vedanta Sandesh ~ Apr '22

Vedanta Piyush ~ Mar '22

Visit us online :
Vedanta Mission

Check out earlier issues of :
Vedanta Piyush

Join us on Facebook :
Vedanta & Dharma Shastra Group

Published by:
Vedanta Ashram, Indore

Editor:
Swamini Amitananda Saraswati